क्या करें कार्बन डाईऑक्साइड का?

डॉ. अरविंद गुप्ते

आजकल दुनिया में ग्लोबल वॉर्मिंग को लेकर घमासान मचा हुआ है। कारखानों और वाहनों में जलने वाले जीवाश्म ईंधनों (कोयला और तेल) से ग्रीनहाउस गैसें बनती हैं। ये वातावरण में पहुंच कर पृथ्वी के तापमान को बढ़ाती हैं पर सबसे बड़ी समस्या यह है कि इन ईंधनों का तुरंत कोई सस्ता विकल्प उपलब्ध नहीं है। आने वाले समय में शायद यह संभव हो सकेगा कि हम केवल हवा, पानी और सूर्य से ऊर्जा प्राप्त करें और जीवाश्म ईंधनों का इस्तेमाल बिलकुल न करें। किंतु फिलहाल तो कोयले और तेल के उपयोग से पूरी तरह छुटकारा पाना संभव नहीं है। अतः वैकल्पिक ऊर्जा के स्रोत विकसित करने के प्रयासों के साथ-साथ ये प्रयास भी किए जा रहे हैं कि ग्रीनहाउस गैसें, विशेष रूप से कार्बन डाईऑक्साइड, का इस प्रकार निपटारा किया जाए कि ये वातावरण में न पहुंचे।

कार्बन डाईऑक्साइड के निपटारे के लिए एक प्रयास अमरीका और कुछ अन्य देशों में किया जा रहा है। अमरीका की एक बड़ी विद्युत उत्पादन कम्पनी के द्वारा विकसित प्रक्रिया में विद्युत संयंत्रों की चिमनियों से निकलने वाली गैसों की अमोनिया के साथ अभिक्रिया बहुत कम तापमान पर करवाई जाती है। इसके फलस्वरूप इस धुएं में स्थित कार्बन डाईऑक्साइड अमोनिया के साथ अभिक्रिया करके अमोनियम कार्बोनेट बनाती है। इसे बहुत अधिक दाब पर इतना सम्पीड़ित किया जाता है कि वह द्रव बन जाता है। इस द्रव को आठ हज़ार फीट गहरे कुएं में पंप कर दिया जाता है। इतनी अधिक गहराई पर यह द्रव चट्टानों में स्थित छिद्रों में भर जाता है और स्थाई रूप से भंडारित हो जाता है। इसे कार्बन पकड़ और भंडारण या कार्बन कैप्चर एंड स्टोरेज (CCS) प्रक्रिया कहते हैं।

यह प्रयोग अभी प्रारंभिक अवस्था में है और इससे कई सवाल जुड़े हुए हैं। पृथ्वी के गर्भ में अलग-अलग रासायनिक और भौतिक बनावट की चट्टानें होती हैं और द्रव के भंडारण की इनकी क्षमता भी अलग-अलग होती है। यदि किसी स्थान पर भूगर्भीय चट्टानों में यह क्षमता कम हुई तो परियोजना की लागत बढ़ जाएगी। दूसरा मुद्दा यह है कि कोयले से बनने वाली कार्बन डाईऑक्साइड का निपटारा भले ही हो जाए, किंतु कोयले को खदानों से निकालने और कोयले के जलने पर उड़ने वाली राख से पर्यावरण को पहुंचने वाली हानि को तो टाला नहीं जा सकता। तीसरा पहलू है लागत का। कार्बन डाईऑक्साइड को द्रव में बदलने और फिर उसे गहरे कुओं के माध्यम से भूगर्भ में पहुंचाने की कीमत काफी अधिक होती है। इससे विद्युत उत्पादन की लागत भी बढ़ती है। इस प्रौद्योगिकी के साथ जुडा एक खतरा यह है कि जमीन के भीतर भंडारित कार्बन डाईऑक्साइड दुर्घटनावश धमाके के साथ बाहर आ सकती है।

किंतु ग्रीनहाउस गैसों के निपटारे के लिए दबाव इतना अधिक है कि विपरीत पहलुओं के बावजूद इस प्रौद्योगिकी को बढ़ावा दिया जा रहा है।

प्रौद्योगिकी पर तो काम शुरू हो चुका है, किंतु कार्बन डाईऑक्साइड के निपटारे के लिए एक अन्य ऐसा सुझाव आया है जो बिलकुल विज्ञान कथा जैसा लगता है। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर आल्फ्रेड वॉग का प्रस्ताव है कि पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र का एक चलित सीढ़ी के समान उपयोग करके वातावरण में स्थित कार्बन डाईऑक्साइड को अंतरिक्ष में भेज दिया जाए ताकि वह कभी लौटकर न आ सके।

प्रोफेसर वॉग चाहते हैं कि यह सीढ़ी अलास्का में उत्तर ध्रुवीय क्षेत्र में बनाई जाए। इसका कारण यह है कि उत्तर और दक्षिण दोनों ध्रुवीय प्रदेशों में पृथ्वी का चुम्बकीय क्षेत्र सीधे अंतरिक्ष में खुलता है। सूर्य से निकलने

वाले कण एक धारा के रूप में इन क्षेत्रों में आ कर वातावरण से टकराते हैं। इस टकराहट के कारण ही ध्रुवीय प्रदेशों में ध्रुवीय ज्योति दिखाई देती है जो पृथ्वी पर अन्यत्र कहीं भी दिखाई नहीं देती। इन सूर्य कणों के साथ कई गिगावॉट विद्युत आती है जिसका उपयोग करके प्रोफेसर वॉग ग्रीनहाउस गैसों को कम करना चाहते हैं।

इस योजना का आधार यह है कि कार्बन डाईऑक्साइड के अणु स्वतंत्र इलेक्ट्रानों के साथ बंधना पसंद करते हैं। हवा में उपस्थित कार्बन डाईऑक्साइड के कुछ ही अणुओं को इस प्रकार के इलेक्ट्रॉन मिल पाते हैं। परिणाम यह होता है कि कार्बन डाईऑक्साइड के ये अणु ऋण आवेश धारण कर लेते हैं।

दूसरी अच्छी बात यह है कि पूरी पृथ्वी के ऊपर खड़ी दिशा में एक नियत विद्युत क्षेत्र होता है। इस विद्युत क्षेत्र के कारण कार्बन डाईऑक्साइड जैसे ऋणात्मक आवेश वाले आयन ऊपर की ओर जाने लगते हैं। शुरुआत में यह प्रक्रिया धीमी होती है क्योंकि अन्य अणुओं के साथ होने वाली टकराहट इन अणुओं को अपने पथ से भटकाती रहती है। किंतु कुछ दिनों के बाद जब वे लगभग 125 किमी ऊपर पहुंच जाते हैं तब वहां वातावरण इतना विरल होता है कि आयन स्वतंत्रतापूर्वक गति कर सकते हैं। इसके बाद वे पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र पर सवार होकर अंतरिक्ष की ओर अपनी एकदिश यात्रा शुरू करते हैं।

ध्रुवों के ऊपर चुम्बकीय क्षेत्र की बल रेखाएं लगभग सीधी नीचे से ऊपर की दिशा में होती हैं। जब कोई आवेशित कण चुम्बकीय क्षेत्र में होता है तब वह सर्पिल गति करता हुआ बल रेखाओं के ऊपर से गति करता है। 125 कि.मी. की ऊंचाई पर कार्बन डाईऑक्साइड आयन एक सेकंड में 17 बार घूमता है।

किंतु जैसे-जैसे वह ऊपर की ओर बढ़ता है, क्षेत्र कमज़ोर होता जाता है। इसके चलते उसे प्रति सेकंड कम चक्कर लगाने पड़ते हैं। ऐसा चुम्बकीय संवेग संरक्षण के नियम के कारण होता है। चूंकि उसकी गतिज ऊर्जा कम नहीं हो सकती, क्षेत्र की दिशा में उसकी गति बढ़ती चली जाती है। अंततः वह अंतरिक्ष में चला जाता है।

सवाल यह है कि क्या कार्बन डाईऑक्साइड के अणुओं को पर्याप्त संख्या में अंतरिक्ष में धकेला जा सकता है? प्रोफेसर वॉग सोचते हैं कि यह संभव है। धकेलने की यह क्रिया दो चरणों में होगी। सबसे पहले कार्बन डाईऑक्साइड का बड़ी मात्रा में आयनीकरण करना होगा। डॉ. वॉग का सुझाव है कि शक्तिशाली लेज़र की मदद से अंतरिक्ष में स्थित धूल कणों को उत्तेजित करके इलेक्ट्रॉन उपलब्ध हो जाएंगे जो कार्बन डाईऑक्साइड के साथ मिलकर आयन बना लेंगे।

अब इन आयनों को 17 साइकल प्रति सेकंड वाली रेडियो तरंगों से उचित ऊंचाई पर भेजा जाएगा। एक बार वहां पहुंचने पर इन आयनों की सर्पिल गति को सूर्य से आने वाले आवेशित कणों की ऊर्जा मिल सकेगी और उनकी गति बढ़ जाएगी। संभाव्यता आधारित अनुनाद नामक प्रक्रिया के कारण यह संभव हो पाता है। घूमने वाले अणुओं को ऊर्जा पाने में इसलिए प्राथमिकता मिलती है कि शेष अणु बेतरतीबी से गति करते होते हैं। जब इन अणुओं की गति बढ़ जाएगी तब वे बल रेखाओं पर होते हुए अंतरिक्ष में चले जाएंगे।

डॉ. वॉग ने इस परियोजना लिए ज़रूरी ऊर्जा की गणना की है। इसके अनुसार यदि लेज़र और रेडियो ट्रांसमिटरों को जीवाष्म ईंधनों से बनी विद्युत से चलाना भी पड़े तो भी इससे जितनी कार्बन डाईऑक्साइड वातावरण में पहुंचेगी उससे कई गुना अधिक कार्बन डाईऑक्साइड वातावरण से बाहर यानी अंतरिक्ष में भेजी जा सकेगी। उनके अनुसार वातावरण में स्थित कार्बन डाईऑक्साइड में पर्याप्त कमी करने के लिए केवल कुछ दर्जन मेगावाट विद्युत की ही आवश्यकता होगी। डॉ. वॉग ठीक-ठीक यह कहने की स्थिति में नहीं हैं कि यह कमी कितनी होगी, किंतु वे मानते हैं कि यह इतनी होगी कि वातावरण में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा काफी कम हो जाएगी। ***(स्रोत फीचर्स)***